आ) नारी-भावना।

आ) नारी भावना --

कबीर कालीन समाज में विलासिता का प्रचार, शासकों की स्वच्छन्द और विलासीवृत्ति के कारण हुआ । देश की शासनसत्ता राजा के हाथ में होती थी । राजा निरंकुश होता था । यही कारण था कि राज घरानों में देश की प्रसिद्ध सुन्दरियों का संग्रह किया जाता था और उनके शृंगार साधनों पर फिजूल खर्च किया जाता था । राजसी ठाट-बाट विलासी था और उसका प्रभाव सर्व साधारण पर पडना स्वाभाविक था । परिणाम स्वरूप राजा से लेकर प्रजा तक सर्वत्र विलासी वातावरण हो गया था । कबीर ने इस बात का कई बार उल्लेख किया हैं । समाज में कनक और कामिनी के कारण सर्वत्र विलासिता थी । इसी विलासिता के कारण, समाज का सर्वनाश हो रहा था । मनुष्य अपना गन्तव्य खो गया था । वह इन्द्रिय-सुख के लिए प्यासा था । वह वासना की प्यास स्त्री-पुरुष दोनों में थी । पुरुष आचरण भ्रष्ट थे , स्त्रियाँ जानबूझकर व्यभिचार करती थीं । ऐसी स्त्रियों को पति की तरफ से आदर नहीं मिलता था ।

" कबीर जे को सुन्दरी, जांणि करैं विभचार ।
ताहिन कबहूँ आदरै, प्रेम पुरुषा भरतार ।" [६०]

कबीर कहते हैं कि जिस प्रकार नरक कुंड अपवित्र होता हैं । उसी प्रकार स्त्री भी अपवित्र होती हैं । अपनी इन्द्रियाँ रूपी लगाम को बिरले व्यक्ति ही रोक पाते हैं । सम्पूर्ण सन्सार स्त्री-मोह मे पडकर मरकर नष्ट हो गया । केवल कुछ साधु व्यक्ति ही इसके प्रलोभन से बचकर भवसागर पार कर पाते हैं --

" नारी कुंड नरक का, बिरला थंभै बाग ।
कोइ साधू जन ऊबरै, सब जग मूवा लाग ।" [६१]

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR

कामिनी (नारी) काली नागिन के समान विष से भरी हुई है । वह तीनों लोगों के मध्य घूम-घूमकर लोगों को डँसती रहती है । उसके प्रभाव से केवल राम-भक्त ही बच पाते हैं । विषय वासना में डूबे हुए व्यक्तियों को तो वह डँस ही लेती है ।

"कांमणि काली नागणीं, तीन्यूं लोकमँझारि ।
राम सनेही ऊबरे, विषई खाये झारि ।।"[६२]

पुरुष भी पर-स्त्री-गामी थे । पर-नारी-सहवास से कोई विरला ही बचा था । इससे मनुष्य की बुद्धि, विवेक एवं स्वास्थ्य का ह्रास हो रहा था । इसलिए कबीर ने नर-नारी की कामुकता को नरक कहा है । कामुकता से हरि-भजन में बाधा पड़ती है । निष्काम भाव से हरि-भजन किया जा सकता है --

"नर-नारी सब नरक है, जब लग देह सकाम ।
कहे कबीर ते राम के, जे सुमिरैं निहकाम ।।"[६३]

उन्होंने यह भी कहा है कि कामवासना हेतु नारी के निकट रहना भी बुरा है । वे लोग नीच हैं जो नारी के निकट रहते हैं और वे उत्तम हैं जो नारी से दूर रहते हैं ।

"जोरन जुठानी जगत की, भले बुरे का बीच ।
उत्तम ते अलगे रहैं, निकट रहे ते नीच ।।"[६४]

वास्तव में उस समाज में भ्रष्टाचार फैलानेवाली स्त्रियाँ ही थीं । इसलिए कबीर ने बार-बार उनकी निंदा की है । वस्तुत: तत्कालीन समाज में विलासिता स्त्रियों के कारण थी । फलत: पूरे समाज का पतन हो रहा था ।

कबीर के समाज में अधिकांश लोग विलासीवृत्ति के थे । जिनके पास धन-सम्पत्ति थी वे तो विलासिता में डूबे ही थे, पर गरीब वर्ग भी उससे प्रभावित था । सामाजिक विकास के लिए कोई संगठित व्यवस्था नहीं थी । इसीलिए जिसे जो अच्छा लगता वही करता ।

कबीर के समाज में नर-नारी का एक सामान्य स्तर बना हुआ था । नारी और पुरुष का पारस्परिक प्रेम ही समाज में विविध परिवार का रूप लिए था । यद्यपि नारी का स्तर कबीर के समाज में गिरा हुआ था । पर वे गृहस्थी के कार्यों में पुरुष के लिए सहायक थीं, पानी भरना, भोजन बनाना, सूत कातना, खेत-खलिहान में (किसान) (पति) के साथ काम करना आदि स्त्रियों के सहयोगी कर्म थे । ये स्त्रियाँ विवाह के अवसर पर मंगलगीत गाती थीं ।

" दुलहिन गावहु मंगलाचार ।
हमारे घरी आये हो, राजाराम भरतार ।। " ६५

× × × × ×

" सखी सहेली मंगल गावैं, सुख दिखना थैं हल्द चढायी । " ६६

स्त्री जब दुल्हन बनकर पति से मिलने के लिए जाती थी , तो बहुत शृंगार करती थी । समाज में पतिव्रता नारियाँ भी थीं, जो अपने पति के सुख के लिए सर्वस्व न्योछावर करती थीं । ऐसी पत्नियाँ अपने पति की बहुत प्यारी होती थीं । समाज में अपने पति के प्रति स्त्रियों का त्याग महान था । इसलिए समाज में सती प्रथा का प्रचलन था । पति के मरने पर वे अपने को भी जला देती थीं ।

कबीर ने अपने समाज में स्त्रियों के अच्छे और बुरे दोनों रूपों को देखा था । जहाँ पुरुष और स्त्री में चरित्र-हीनता थी, वहाँ उन्होंने दोनों की निंदा की है । वैसे तो उन्होंने पूरी नारी जाति को एक रूप में देखा है ।

साधारण जन-जीवन नारी के वासना-सौन्दर्य पर आकर्षित था । उसके रूप पर मुग्ध था । विषय विकार में रुची लेता था । इस से, पुरुष और नारी दोनों का चरित्र गिरा हुआ था । इसलिए कबीर ने ऐसे रूप को विष कहा है । जिसके ग्रहण से मनुष्य मर जाता है ।

कबीर का कहना है कि एक तो सोना अर्थात धन दूसरी स्त्री को प्राप्त कर लेना, विष फल का प्राप्त कर लेना है । इन दोनों के देखने मात्र से ही विष के समान प्रभाव हो जाता है और यदि इनका उपभोग किया जाय तो निश्चय ही मृत्यु आती है ।

" एक कनक अरु कामिनी, विष फल किए उपाय ।
देखे ही थे विष चढ़ै, खाये सूँ मरि जाइ ।। " ६७

यह नारी संसार की माया है, समाज का बन्धन है । जिस के फेर में पड़कर मनुष्य जहाँ का तहाँ ही रह जाता है । काम, क्रोध, मोह, लोभ की ज्वाला में अपने आप भस्म हो जाता है ।

" काम क्रोध दोऊ भये बिकारा, आप ही आप जरै संसारा ।। "६८

इसलिए हे मानव ! विषय रस को छोड़कर तुम हरि-भक्त बनो, नेक बनो, बार-बार नर तन नहीं मिलेगा ।

" कबीर हरि की भगति करि, तजि विषिया रस चोज ।
बार-बार नहिं पाइए, मनिषा जन्म की मौज ।। " ६९

कबीर की उक्तियों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि उन्होंने माया को अविद्या विशेषा तथा कनक-कामिनी से अलग करके नहीं देखा ।

कबीर कहते हैं कि जिस प्रकार रुई को लपेटी हुई अग्नि उसे जलाकर भस्म कर देती है, उसी प्रकार कनक और कामिनी की माया में पड़कर सब जगत भस्म हो जाता है, नष्ट हो जाता है । उसका बचाव किसी भी प्रकार नहीं किया जा सकता।

" माया की झाल जग जल्या, कनक कांमिणीं लागि ।
कह धौं किहि विधि राखिये, रुई पलेटी आगि ।। " ७०

कबीर ने उसे पापिनी, मोहनी, डायिन, कामिनी, सर्पिणी आदि न जाने कितने तिरस्कार सूचक नाम दिए हैं ।

कबीर माया को पापिणी, वेश्या मानते हैं । अपने आकर्षण द्वारा वह लोगों को फँसाती है । लेकिन उसका पूरा उपभोग कोई नहीं ले सकता । उसकी अप्राप्ति में ही सब सन्सार दुःख भोगता है ।

" कबीर माया पापणीं, लालै, लाया, लोग ।
पूरी किनहूँ न भोगई, इनका इहै बिजोग ।। " ७१

कबीरदास कहते हैं कि माया बडी मोहिनी है । उसके आकर्षण से बडे-बडे ज्ञानी भी छूटने का प्रयत्न करने पर भी छूट पाते क्योंकि वह उन पर मोहक बाणों पर बाण चलाती रहती है ।

" कबीर माया मोहनी, मोहे जांण सुजांण ।
मागां ही छूटै नहीं, भरि भरि मारै बांण ।। " ७२

कबीर कहते हैं कि यह माया पिशाचिनी है, जो संसार के सब ही मनुष्यों को खाती है । यदि यह साधु जनों के साथ ही फटकी तो इस पापिणी के दाँत उखाड दूँगा ।

" कबीर माया डाकणी, सब किसही कौं खाइ ।
दांत उपाडौं पापणीं, जे सन्तौं नेडी जाइ ।। " ७३

वह इतनी दुष्टा है कि जन्म लेने के साथ ही जीव को धर दबाती है । बडे बडे योगी, यती तथा संन्यासियों को भी नहीं छोडती । काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मान आदि इसके सहायक हैं । ' यह मेरा है, यह तेरा है ' इस प्रकार की भावना इसके प्रबल बन्धन के रूप में है । जिसमें इसने सारे सन्सार को बाँध रखा है । उसके नाना रूप हैं । ब्राह्मण के घर ब्राह्मणी बनकर रहती है । योगी के घर चेली हो जाती है । मुसलमान के घर कलमा पढकर तुर्किन हो जाती है, केशव के घर कमला होकर बैठ गयी, शिव के घर भवानी हो गयी, पण्डा के घर मूर्ति बन गयी और तीर्थों में पानी बन गयी । किसी के घर हिरा हुयी, किसी के घर कानी-कौडी । भक्त की भक्तिन हुयी, ब्रह्मा की ब्रह्माणी । कबीर कहते हैं कि यह बडी विचित्र कथा है --

" माया महा ठगिनी हम जानी ।
निर्गुन फाँसी लिए कर डोलै, बोलै मधुरा बानी ।।
केशव के कमला होई बैठी, शिव के भवन भवानी ।
पण्डा के मूरत होइ बैठी, तिरथ हूँ में पानी ।।
जोगी के जोगीन हो बैठी, राजा के घर रानी ।
काहु के हिरा होई बैठी, काहु के कौडी - कानी ।।
भगवन्त के भक्तिन होई बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्माणी ।।
कहै कबीर सुन मैं साधो, यह सब अकथ कहानी ।। " ७४

जितने चतुर शैाकीन हैं, सब को यह मार गिराती है, कोई बच नहीं पाता । मौनी बाबा, वीर बाबा, दिगंबर बाबा, योगी बाबा, जंगम बाबा कोई नहीं बचता । बचता वही है, जो राम की शरण में हो ।

माया को हर व्यक्ति नहीं जानता और जो इसको नहीं जानता, उसी को वह सताती है । त्रिलोक-विजयिनी इस माया को कोई नहीं खा सकता ।

" मीठी मीठी माया, तजी न जाई ।
अज्ञानी पुरिषा कौं भोलि भोलि खाई ।। " ७५

जब तक जीव माया के जाल में फँसा रहता है, तब तक वह ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं कर सकता । किन्तु जिनको परमात्म-ज्ञान हो जाता है, उन को माया का ज्ञान भी हो जाता है । फिर उनके लिए माया न भयंकर है और न मोहक ही । कबीर ने माया की मोहक शक्ति का वर्णन अनेक स्थलों पर किया है ।

कबीर कहते हैं, माया बडी सम्मोहक खांड के समान मीठी होती है । मेरे सद्गुरु ने कृपा कर इस के जाल से विमुक्त कर दिया । नहीं तो यह (कबीरदास को) नष्ट करके ही छोडती ।

" कबीर माया मोहणीं, जैसी मीठी खांड ।
सद् गुरु की कृपा भई, नहीं तो करती भांड ।। " ७६

माया सर्व व्यापिनी हैं । यह परमात्मा की ठगौरी हैं । इसके प्रभाव से जीव को स्वरूप-विस्मरण हो जाता हैं । कबीर ने माया की आवरण शक्ति को ही विशेष रूप से देखा हैं । उसकी विशेषता यह हैं कि वह सत्य को आवृत्त करती हैं । जिससे मनुष्य सत्य को सत्य न समझ कर झूठ को ही सत्य मान बैठता हैं । माया का प्रथम पुरस्कार भ्रम की उत्पत्ति हैं । यही कारण हैं कि कबीर ने माया के संकेत में बडी कटूक्तियों का प्रयोग किया हैं ।

" कबीर माया पापणीं, हरि सूँ करै हराम ।
मुखि कडियाली कुमति की, कहण न देई राम ।। "[७७]

इस संसार मे जीव विषय-वासना और माया के द्वारा ठग लिया जाता हैं । कबीर दास इसी कारण माया को वेश्या कहते हैं और उससे छुटकारा पाने के लिए राम-चरण को ग्रहण करने का उपाय सुझाते हैं --

" जग हट वाडा स्वाद ठग, माया बेसां लाइ ।
राम चरण नीकाँ गही, जिनि जाइ जनम ठगाई । "[७८]

नारी निंदा तो कबीरदास जी ने जी खोलकर की हैं । उनकी दृढ धारणा हैं --

स्त्री का संपर्क मनुष्य को भक्ति, मुक्ति और आत्मज्ञान इन तीनों सुखों से वंचित कर देता हैं । कामी मनुष्यों का इन तीनों से कोई भी संबंध नहीं रहता हैं --

" नारि नसावै तीन सुख, जो नर पासैं होय ।
भगति, मुकति, निज ध्यान में, पैठ न सकई कोय । "[७९]

कबीर कहते हैं कि कनक और कामिनी एक दुर्गम घाटी की तरह हैं । उन्हें पार कर जाना बहुत कठिन हैं ।

" एककनक और कामिनी दुरगम घाटी होय । "[८०]

नारी समाज का एक अविभाज्य अंग है । प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था में उसका एक निश्चित स्थान या कार्यक्षेत्र होता है । कबीर ने नारी को बुद्धि, विवेक, ज्ञान, भक्ति, सुख शांति एवं स्वास्थ्य आदि की हर्ता, निर्लज्ज, नागिन, डायिन, सर्पिणी, कामिनी, पापिनी, मोहनी आदि कहा है और उससे बचने रहने का निर्देश किया है । नारी विषायक उनकी यह उक्तियाँ परिमाण में अधिक होने के कारण विद्वानों की एक धारणा यह देखी जाती है कि स्त्री जाति को इन संतों द्वारा हानि पहुँचती है । सुख-साधना की सामग्री के रूप में नारी को देखनेवाला कबीर युग नारी के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार करने में असमर्थ है । किन्तु तथ्य यह है कि उन्होंने नर-नारी दोनों में एक ही आत्मतत्व की व्याप्ति मानी है, फिर जितनी कटु निंदा उन्होंने वासना-ग्रस्त नारी की की है उतनी ही कामी पुरुषों की भी की है । अत: यह नहीं कहा जा सकता कि नारी का महत्व उन्हें अस्वीकृत था या उसके प्रति कोई द्वेषभाव था । कबीर की रचनाओं में नारी की एकमात्र निंदा ही सब कुछ नहीं है । उन्होंने उसके जीवन के अन्य पहलुओं का भी उद्घाटन किया है । कबीर की निम्नलिखित उक्तियों में पुत्री व बहन के प्रति समुचित आदर और स्नेह व्यक्त हुआ है --

" लहुरी धीइ सब कुल खोयाँ, तब ढिग बैठन पाई ।
कहै कबीर भाग बपुरी को किलि किलि सबै चुकाई ।। "[६१]

" बलि जांउ ताकि जिनि तुम्ह पठई एक माइ एक बहना । "[६२]

अत: यह कहना असंगत न होगा कि पितृ-गृह का नारी का जीवन न सन्तों द्वारा निन्दित है और न सामाजिक स्तर पर उपेक्षित या अपमानित ।

परिवारों एवं जातियों में लडकियों की बाल-हत्या का प्रचलन, शासक वर्ग द्वारा उनका अपहरण, कुमारी अवस्था में ही किसी की वासना का शिकार हो जाना, वेश्या वृत्ति का प्रचलन एवं मीना बाजारों में उनका क्रय-विक्रय आदि नारी जीवन की विकृतियाँ थीं । किन्तु इन में से अन्तिम दो का संबंध शहरी जीवन से था और शेष अपवाद रूप में ही थीं, सर्वसामान्य नहीं ।

एक सामाजिक परिवार की 'नवबधू' के रूप में आवश्यक सुख-स्नेह एवं सम्मान आदि प्राप्त करने के लिए सर्व प्रथम तो उस में चारित्रिक दृढता का होना आवश्यक समझा जाता था । साज-शृंगार या रूप-सौन्दर्य से नहीं किन्तु पतिव्रता धर्म का पालन कर वह पति का हृदय जीत सकती थी ।

"जो पै पतिव्रता है नारी, कैसे ही रहौ सो पियहि पियारी ।"[८३]

नारी परिवार के अन्य छोटे-बडे सभी सदस्यों के प्रति आवश्यक सम्मान व सेवा का व्यवहार कर वह उनके हृदय में अपना स्थान बना सकती थी ।

"पहली नारि सदा कुलवंती, सासू ससुरा मानै ।
देवर जेठ सबनि की प्यारी पिय कौं मरम सो जानै ।।"[८४]

भक्ति-भाव या धार्मिक संस्कारों से युक्त जीवन व्यवहार को अपना कर और ऐसी ही सन्तानों की माता बनकर वह सब का सम्मान प्राप्त कर सकती थी ।

पतिव्रता पत्नी का दु:खी रहना पति के लिए लज्जास्पद माना जाता था ।

'पतिव्रता नाँरिहा रहै, तौ उस ही पुरिषा कौं लाज ।।"[८५]

ईश्वर संबंधी दृढ विश्वास , प्रेम, त्याग आदि की महत्ता स्पष्ट करते हुए कबीरदास सती का उदाहरण देते हैं --

"सती को कौन सिखावता है,
संग स्वामी के तन जारना जी ।
प्रेम को कौन सिखावत है,
त्याग मांहिं भोग का पावना जी ।।"[८६]

अपने स्वामी अर्थात पति के संग अपने आप को जलाने के लिए सती को कौन सिखाता है ? यह उसे सिखाने की जरूरत है ही नहीं । वैसे ही जो भक्त भगवान से प्रेम करता है, उसे त्याग में ही भोग प्राप्त होता है, यह सिखाने की जरूरत नहीं है ।

कबीर के समय सती-प्रथा प्रचलित थी। सदाचार और एकनिष्ठ प्रेम के समर्थक इन कवियों ने उसका विरोध न करके उसे प्रशंसनीय माना है। पर्दा या घूँघट के प्रचलन का उल्लेख मिलता है। किन्तु `मुद्रा पहरया जोग न होई, घूँघट काढ्या सती न होई` इस उक्ति में कबीर ने इस प्रथा को आवश्यक नहीं माना है। व्याभिचारिणी, विधवा एवं पति विरहित होना नारी जीवन के अभिशाप या उसके दुःखी होने के मुख्य कारण थे।

निष्कर्ष --

ऊपर के विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि तत्कालीन समाज और सन्तों की दृष्टि में भी पतिव्रता, संयमी, संस्कारी एवं सहन-शील व कर्तव्य परायण नारियाँ प्रशंसनीय व वंदनीय थीं। तो कुलटा, वेश्या, विलासिनी व कर्कशा निन्दनीय थीं। मदनगोपाल गुप्त के इस विचार में तथ्य है कि नारी-निन्दा के माध्यम से सन्तों ने नारी के प्रति अतिशय आसक्ति का जो विरोध किया है वह `भारतीय संस्कृति की भावना से ही नहीं प्रत्युत सामाजिक जीवन को सुखी तथा संतुलित रखनेवाले सर्व व्यापक तथ्य के रूप में भी स्वीकार किया जा सकता है।`[४७]

..